इस साल के विज्ञान नोबल पुरस्कार

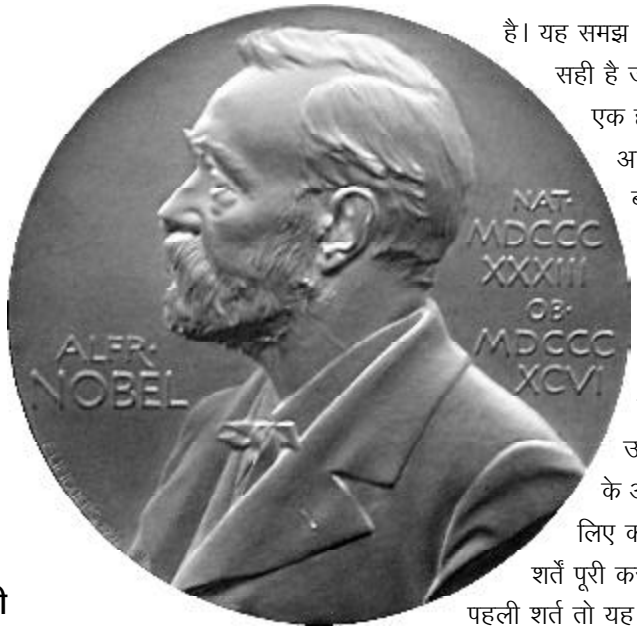

डॉ. सुशील जोशी

इस साल विज्ञान में जो नोबल पुरस्कार दिए गए हैं, संभवतः उनका महत्व समझना बहुत आसान है। एक पुरस्कार ऑप्टिकल फाइबर के क्षेत्र में दिया गया है, दूसरा कोशिका में प्रोटीन बनाने की मशीनरी की जांच-पड़ताल के लिए है और तीसरा जिनेटिक सामग्री की सुरक्षा व्यवस्था की खोजबीन के लिए मिला है। प्रत्येक पुरस्कार तीन-तीन लोगों में बंटा है। ये तीनों ही क्षेत्र ऐसे हैं जहां की जा रही खोजबीन का प्रत्यक्ष उपयोग होने लगा है। इन तीनों पर संक्षेप में नज़र डालने से पहले एक बात कहना मुनासिब है। वास्तव में ऑप्टिकल फाइबर के क्षेत्र में शुरू से ही वैज्ञानिक शोध के साथ-साथ टेक्नॉलॉजी का विकास भी शोधकर्ताओं के मन में था मगर कोशिका की बुनियादी क्रियाओं से सम्बंधित जो पुरस्कार मिले हैं उनके बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। चाहे कोशिका की प्रोटीन मशीनरी की बात हो या कोशिका की जिनेटिक सामग्री की सुरक्षा की, दोनों ही मामलों में उपयोगिता बाद में उभरी।

ऑप्टिकल फाइबर

आम समझ यह है कि प्रकाश सरल रेखा में चलता है। यह समझ तब तक ही सही है जब तक प्रकाश एक ही माध्यम में आगे बढ़े। यदि बीच में कहीं माध्यम बदल जाए तो प्रकाश मुड़ जाता है। यदि हम प्रकाश का उपयोग संकेतों के आदान-प्रदान के लिए करना चाहें तो दो शर्तें पूरी करनी होंगी। पहली शर्त तो यह है कि प्रकाश हमारी मनमर्ज़ी से रास्ता बदलकर गंतव्य तक पहुंचे। दूसरी शर्त है कि रास्ते में प्रकाश का ह्रास न हो। यह तो सभी जानते हैं कि जब प्रकाश आगे बढ़ता है तो धीरे-धीरे उसकी तीव्रता कम होती है। इस वजह से प्रकाश का उपयोग संकेत भेजने में करना मुश्किल था।

इन दो शर्तों को एक साथ पूरी करते हैं ऑप्टिकल फाइबर। ऑप्टिकल फाइबर कांच के बने रेशे होते हैं। आम तौर पर हम कांच को एक अत्यंत कठोर व टूटने वाले पदार्थ के रूप में जानते हैं। मगर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब सिलिका कांच के बहुत महीन रेशे बनाए जाते हैं तो वे बहुत मज़बूत और लचीले होते हैं। ऐसे एक रेशे में प्रकाश का एक पुंज प्रविष्ट कराया जाता है और वह उस रेशे में ही आगे बढ़ता है। वह उस रेशे में से बाहर नहीं निकलता। इसका कारण प्रकाश के एक गुण में है। जब प्रकाश एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करता है तो वह अपने रास्ते से विचलित हो जाता है। इसे प्रकाश का अपवर्तन कहते हैं। किसी-किसी स्थिति में अपवर्तन कुछ इस तरह होता है कि प्रकाश दूसरे माध्यम में जाने की बजाय वापिस उसी माध्यम में 'परावर्तित' हो जाता है। इसे प्रकाश का पूर्ण

- चार्ल्स काओ
- विलियर्ड बॉयल
- जॉर्ज स्मिथ

आंतरिक परावर्तन कहते हैं। ऑप्टिकल फाइबर को इसी ढंग से बनाया जाता है कि जब भी प्रकाश उसकी परिधि से टकराए तो पूर्ण आंतरिक परावर्तन हो जाए, और प्रकाश तंतु के अंदर ही रहे। तब प्रकाश उस दिशा में आगे बढ़ता है, जिस दिशा में वह तंतु मुड़ता जाता है और दूरी के साथ प्रकाश की तीव्रता भी कम नहीं होती।

तो प्रकाश को एक जगह से दूसरी जगह तक भेजने में पहला पड़ाव था कांच के ऐसे रेशे बनाना जिनमें मज़बूती हो, लचीलापन हो और उनका अपवर्तन का गुण ऐसा हो कि जब भी प्रकाश उनकी परिधि से टकराए तो परावर्तित होकर अंदर ही बना रहे। यह टेक्नॉलॉजी का करिश्मा था। कांच के ऐसे रेशे बनाने के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़े थे। सबसे पहले जो ऑप्टिकल फाइबर बनाया गया था उसमें जितना प्रकाश प्रविष्ट कराया जाता, लगभग 20 मीटर बाद उसमें से 1 प्रतिशत ही बच पाता था। इस तरह के ऑप्टिकल फाइबर की मदद से तो लंबी दूरी के संचार की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अलबत्ता गैस्ट्रोस्कोपी वगैरह में उसका उपयोग 1960 के दशक में शुरू हो गया था।

दरअसल, चार्ल्स काओ को नोबल पुरस्कार उनके उन प्रयासों के लिए दिया गया है जिनकी बदौलत ऑप्टिकल फाइबर में प्रकाश को लंबी दूरी तक पहुंचाना संभव हुआ। उन्होंने इसके लिए विशिष्ट कांच के निर्माण का सुझाव दिया। इस अत्यंत परिष्कृत कांच के रेशों को थोड़े भिन्न किस्म के कांच की परत में लपेटा गया जिसका अपवर्तनांक थोड़ा कम था। इस तरह के प्रयासों की बदौलत ही यह संभव हुआ कि वर्ष 1988 में अमरीका और युरोप के बीच अटलांटिक महासागर में ऑप्टिकल फाइबर की 6000 किलोमीटर लंबी केबल बिछाई गई और इसके माध्यम से संकेत भेजे गए। आज टेलीफोन व डैटा संचार का लगभग पूरा नेटवर्क ऑप्टिकल फाइबर केबलों पर टिका है और एक अनुमान के मुताबिक दुनिया भर में ऐसी 1 अरब किलोमीटर केबलें बिछी हैं।

नोबल समिति द्वारा दी गई जानकारी से स्पष्ट है कि ऑप्टिकल फाइबर को संचार में उपयोग कर पाने से पहले सैकड़ों लोगों और कई प्रयोगशालाओं का योगदान रहा है। चार्ल्स काओ का महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि उन्होंने संचार में ऑप्टिकल फाइबर के उपयोग पर ज़ोर दिया, कांच में से प्रकाश के रिसाव के कारणों का गहन अध्ययन किया और ऑप्टिकल फाइबर के उपयोग की संभावना को पुरज़ोर तरीके से प्रस्तुत करते रहे। उनके ही प्रयासों का परिणाम रहा कि ऑप्टिकल फाइबर के क्षेत्र में नए-नए शोधकर्ता भिड़े रहे और अंततः यह टेक्नॉलॉजी परवान चढ़ी और इस कदर चढ़ी कि आज इसके बिना दुनिया की कल्पना भी मुश्किल है। लिहाज़ा भौतिकी के नोबल पुरस्कार की आधी राशि चार्ल्स काओ को प्रदान की जा रही है।

संचार में ऑप्टिकल फाइबर के उपयोग में एक महत्वपूर्ण बाधा तो कांच के गुणों के कारण थी। अंततः सिलिका कांच ने इस समस्या को सुलझाने का काम किया। यह कांच इतना पारदर्शी है कि कहते हैं कि यदि प्रशांत महासागर इस कांच का बना होता तो हमें उसका पेंदा साफ नज़र आता। ऑप्टिकल फाइबर के उपयोग में दूसरी समस्या स्वयं प्रकाश के गुणों की भी थी। कांच के

रसायन

- वेंकटरमन रामकृष्णन
- थॉमस स्टाइट्ज़
- एडा योनाथ

द्वारा प्रकाश का अवशोषण प्रकाश की तरंग लंबाई पर निर्भर है। कुछ ही ऐसी तरंग लंबाइयां हैं जिनका अवशोषण बहुत कम होता है। इन तरंग लंबाइयों के लेसर का निर्माण भी इस टेक्नॉलॉजी के उपयोग में एक महत्वपूर्ण कदम रहा है।

आज जो सूचनाएं उपरोक्त ऑप्टिकल फाइबर पर भेजी जा रही हैं उनमें पाठ्य वस्तु और आंकड़ों के अलावा संगीत और चित्र या छवियां भी हैं। छवियों को डिजिटल रूप में कैद करने में विलियर्ड बॉयल और जॉर्ज स्मिथ के योगदान को मान्यता देते हुए भौतिकी नोबल का शेष आधा हिस्सा उन्हें प्रदान किया गया। बॉयल और स्मिथ ने 1969 में प्रकाश-विद्युत प्रभाव का उपयोग करते हुए एक प्रकाश संकेत ग्राही का निर्माण किया था। इसमें किसी चित्र या वस्तु से आने वाले प्रकाश संकेतों को विद्युत संकेतों में बदला जाता है और रिकॉर्ड कर लिया जाता है। अब इन संकेतों को पुनः प्रकाश में बदला जा सकता है। इस तरह से चित्र के हर बिंदु से निकलने वाले प्रकाश की सूचना विद्युत संकेतों के रूप में यानी इलेक्ट्रॉनिक रूप में संग्रहित करके रखी जाती है। यह उपकरण (कपल्ड चार्ज्ड डिवाइस) ही सारे डिजिटल कैमरों का दिल है। इस टेक्नॉलॉजी का महत्व बताने की ज़रूरत नहीं है। एक बार जब चित्र इलेक्ट्रॉनिक रूप में उपलब्ध हो जाए, तो उसे प्रेषित किया जा सकता है। 1969 के बाद इस टेक्नॉलॉजी में कई परिवर्तन हुए हैं। जैसे मूल टेक्नॉलॉजी तो सारे चित्रों की सूचना को काले-सफेद के रूप में ही संग्रहित कर सकती थी। बाद में इसमें ऐसे विकास हुए जिनसे रंगीन चित्रों को भी संग्रहित करना संभव हुआ। इस प्रकार से कपल्ड चार्ज्ड डिवाइस का आविष्कार संचार क्रांति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

कोशिका की प्रोटीन मशीनरी

यह पुरस्कार रसायन शास्त्र के लिए तीन वैज्ञानिकों - एम.आर.सी. प्रयोगशाला, कैम्ब्रिज के वेंकटरमन रामकृष्णन, यू.एस. के येल विश्वविद्यालय के थॉमस स्टाइट्ज़ और इस्राइल के वाइज़मैन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स की एडा योनाथ - को संयुक्त रूप से दिया गया है। दरअसल यह पुरस्कार इस बात को पुष्ट करता है कि जैविक तंत्रों को समझने में रासायनिक सूझबूझ निर्णायक महत्व रखती है।

यह तो अब सर्व विदित है कि अधिकांश सजीव कोशिकाओं में अनुवांशिक सामग्री यानी डीएनए उसके केंद्रक में पाई जाती है। यह बात काफी वर्षों पहले ही स्थापित हो चुकी थी कि डीएनए की संरचना से ही यह निर्धारित होता है कि उस कोशिका में कौन-से प्रोटीन बनेंगे। मगर डीएनए केंद्रक में है और प्रोटीन बनते हैं केंद्रक के बाहर कोशिका द्रव्य में। यानी सूचना को केंद्रक से कोशिका द्रव्य में पहुंचाने की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। धीरे-धीरे यह स्पष्ट हुआ कि डीएनए एक सांचे के रूप में काम करता है। इस सांचे की मदद से आरएनए बनाया जाता है जो केंद्रक से बाहर रिस जाता

मेडीसिन

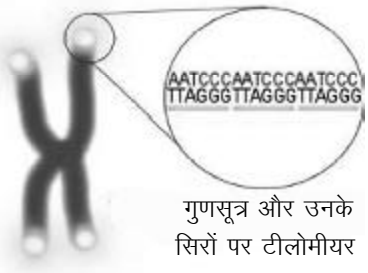

गुणसूत्र और उनके सिरों पर टीलोमीयर

- एलिज़ाबेथ ब्लैकबर्न
- कैरोल ग्राइडर
- जैक ज़ोस्टाक

है। इस आरएनए की मदद से विभिन्न अमीनो अम्लों को सही क्रम में जमाकर सम्बंधित प्रोटीन बनता है। आरएनए कोशिका द्रव्य में जिस स्थल पर काम करता है वह राइबोसोम है।

एक मायने में राइबोसोम कोशिका का प्रोटीन कारखाना है। यह आरएनए और प्रोटीन का मिला-जुला संकुल होता है। केंद्रक से निकला आरएनए और पहले से मौजूद प्रोटीन एंज़ाइम मिलकर नए प्रोटीन बनाने का काम करते हैं। आश्चर्य की बात है कि यहां अमीनो अम्लों को जमाते समय गलती बहुत कम होती है। यदि एक अमीनो अम्ल भी गलत जुड़ जाए तो प्रोटीन अपना निर्धारित कार्य नहीं कर पाता है।

एक कोशिका में दसियों हज़ार राइबोसोम्स पाए जाते हैं। राइबोसोम वह अंग है जो समस्त सजीवों की कोशिकाओं में पाया जाता है। इसलिए इसकी क्रियाविधि को समझना एक महत्वपूर्ण व बुनियादी चीज़ है। इसकी क्रियाविधि को समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि इसकी रासायनिक संरचना क्या है। यही खोज इस वर्ष के रसायन नोबल का विषय है।

राइबोसोम एक जटिल अणु है। ऐसे जटिल अणुओं में परमाणुओं की जमावट को समझने में एक्सरे क्रिस्टेलोग्राफी एक उपयोगी विधि साबित हुई है। स्वयं डीएनए की संरचना का खुलासा रोज़लिण्ड फ्रेन्कलिन द्वारा प्राप्त किए गए एक्सरे चित्रों के आधार पर ही हुआ था। तो 1970 के दशक में एडा योनाथ ने राइबोसोम का एक्सरे विश्लेषण करने का काम शुरू किया। मगर इससे पहले राइबोसोम को शुद्ध रूप में प्राप्त करना और फिर उसके क्रिस्टल बनाना ज़रूरी था। राइबोसोम जैसे जटिल प्रोटीन का दोषरहित क्रिस्टल प्राप्त करना एक टेढ़ी खीर था। योनाथ ने इसके लिए बैक्टीरिया *जिओबेसिलस स्टीरोथर्मोफिलस* का सहारा लिया था। यह बैक्टीरिया 75 डिग्री सेल्सियस पर जीवित रह सकता है। अथक परिश्रम के बाद 1980 के दशक में उन्होंने राइबोसोम की बड़ी इकाई की त्रि-आयामी संरचना पता कर ली थी हालांकि उनके पास जो क्रिस्टल था वह दोषरहित नहीं था। इसके लिए उन्हें 20 साल और मेहनत करनी पड़ी।

एक बार जब योनाथ के प्रयासों से यह स्पष्ट हो गया कि एक्सरे क्रिस्टेलोग्राफी की मदद से राइबोसोम की संरचना का अन्वेषण संभव है तो कई और वैज्ञानिक भी इस कोशिश में लग गए। इनमें रामकृष्णन और स्टाइट्ज़ भी शामिल थे। हालांकि योनाथ ने जो एक्सरे चित्र प्राप्त किए थे वे काफी बढ़िया थे और उनमें प्रत्येक परमाणु की स्थिति देखी जा सकती थी मगर एक बड़ी दिक्कत थी। इस दिक्कत को एक्सरे क्रिस्टेलोग्राफर 'फेज़ समस्या' कहते हैं। यदि आप एक्सरे चित्र में प्रत्येक परमाणु से बने धब्बे का सही विश्लेषण करना चाहते हैं, तो आपको उसका फेज़ कोण मालूम होना चाहिए। आम तौर पर इसके लिए करते यह हैं कि सम्बंधित अणु को पारे जैसी किसी भारी धातु में भिगोते हैं। भारी धातु के परमाणु सतह पर जगह-जगह चिपक

जाते हैं। अब भारी धातु के साथ और उसके बगैर लिए गए एक्सरे चित्रों की तुलना करके फेज़ कोण पता लगाया जाता है। मगर राइबोसोम बहुत जटिल और बड़ा अणु होता है और इससे बहुत अधिक संख्या में भारी धातुओं के परमाणु चिपक जाते हैं और विश्लेषण करना मुश्किल हो जाता है।

इस समस्या का समाधान थॉमस स्टाइट्ज़ ने किया। उन्होंने राइबोसोम के इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी चित्रों की तुलना भारी धातु युक्त राइबोसोम के एक्सरे चित्रों से की। इन दोनों के मिले-जुले उपयोग से फेज़ कोण सम्बंधी जानकारी प्राप्त हो गई। 1998 में स्टाइट्ज़ ने राइबोसोम की बड़ी उप-इकाई की प्रथम क्रिस्टल संरचना प्रकाशित की। इसमें प्रत्येक परमाणु तो नज़र नहीं आता है मगर इसमें आरएनए का बड़ा अणु स्पष्ट दिखता था। यह एक बड़ा कदम साबित हुआ। इस तरह से फेज़ समस्या का समाधान हो जाने के बाद प्रमुख काम यह रह गया था वह था कि राइबोसोम के बेहतर क्रिस्टल प्राप्त किए जाएं। यह काम योनाथ और रामकृष्णन ने संभव बनाया। इनके संयुक्त प्रयासों से अंततः राइबोसोम की परमाणु संरचना स्पष्ट हुई।

इस खोजबीन ने हमें यह समझने में मदद की कि कैसे राइबोसोम बगैर गलती किए प्रोटीन का निर्माण करता है। समझ में यह आता है कि राइबोसोम पर जब अमीनो अम्लों को क्रम में जमाया जाता है तो दोहरी जांच की जाती है कि सही अमीनो अम्ल जमाए गए हैं। एक तो कोशिका द्रव्य में से अमीनो अम्लों को राइबोसोम तक लाने का काम आरएनए करता है। आरएनए के प्रत्येक छोटे-छोटे खंड पर यह सूचना होती है कि वह कौन-से अमीनो अम्ल को लेकर आएगा। एक तो यह तरीका हुआ सही अमीनो अम्ल को सही जगह लगाने का। मगर प्रकृति इतने से संतुष्ट नहीं है। अमीनो अम्लों को जोड़ने से पहले उनके बीच की दूरी को भी नापा जाता है ताकि सही अमीनो अम्ल ही पास-पास आएं।

चूंकि राइबोसोम कोशिका में प्रोटीन बनाने के लिए ज़िम्मेदार है और प्रोटीन ही समस्त जीवन-क्रियाओं का संचालन करते हैं, इसलिए यदि राइबोसोम ठीक से काम न करे तो उस जीव का जीवन खटाई में पड़ जाता है। आजकल हम जितनी बैक्टीरिया-रोधी दवाइयों का उपयोग करते हैं उनमें से अधिकांश बैक्टीरिया के राइबोसोम से जुड़कर उसकी क्रिया को प्रभावित करती हैं और बैक्टीरिया को नष्ट कर देती हैं। इस दृष्टि से देखें तो राइबोसोम की बेहतर समझ हमारे लिए बेहतर बैक्टीरिया-रोधी दवाइयां बनाने का रास्ता खोल सकती है। इस दिशा में काम काफी आगे बढ़ चुका है।

गुणसूत्रों की सुरक्षा

शरीर क्रिया विज्ञान (कार्यिकी) अथवा चिकित्सा विज्ञान का नोबल पुरस्कार इस वर्ष एलिज़ाबेथ ब्लैकबर्न, कैरोल ग्राइडर और जैक ज़ोस्टाक को दिया गया है। इन लोगों का प्रमुख काम यह समझने में रहा कि कोशिकाओं में गुणसूत्रों की रक्षा कैसे होती है। जीवन की निरंतरता की दृष्टि से यह क्रिया बहुत महत्व रखती है क्योंकि यदि गुणसूत्र घिसते रहें तो कुछ अवधि के बाद अनुवांशिक सामग्री अधूरी रह जाएगी।

अधिकांश सजीवों के गुणों का निर्धारण करने वाला डीएनए गुणसूत्रों पर स्थित होता है। ब्लैकबर्न और ज़ोस्टाक ने यह समझने में सफलता प्राप्त की है कि गुणसूत्रों के सिरों पर डीएनए की एक विशिष्ट लड़ी होती है जो डीएनए को विघटन से बचाती है। इस लड़ी को टीलोमीयर कहते हैं। ब्लैकबर्न और ग्राइडर ने उस एंज़ाइम की पहचान की जो टीलोमीयर को बनाने का काम करता है, इसे टीलोमरेज़ कहते हैं।

यह तो पहले से पता था कि गुणसूत्रों के सिरों पर टीलोमीयर नामक रचना गुणसूत्रों को एक दूसरे से जुड़ने नहीं देती। पूर्व नोबल विजेता हर्मन मुलर और बारबरा मेक्लिंक्टॉक ने यह विचार व्यक्त किया था कि संभवतः टीलोमीयर गुणसूत्रों की सुरक्षा में कुछ भूमिका निभाता होगा मगर यह एक पहेली ही रही कि यह काम वह करता कैसे है।

आगे अध्ययन से पता चला कि कोशिका विभाजन के

समय डीएनए की पूरी लड़ी की अनुकृति बनाई जाती है - एक-एक क्षार की नकल की जाती है और हूबहू पहले जैसा डीएनए तैयार हो जाता है। इस क्रिया का संचालन एक एंज़ाइम डीएनए पोलीमरेज़ करता है। मगर दिक्कत यह है कि इस लड़ी के एकदम अंतिम सिरों की अनुकृति नहीं बनाई जा सकती। अर्थात हर बार कोशिका विभाजन के समय डीएनए की अनुकृति बनाते हुए गुणसूत्र छोटे होते जाएंगे। मगर ऐसा होता नहीं है। तो यह भी एक पहेली रही।

इन दोनों पहेलियों को सुलझाया है इस वर्ष के नोबल विजेताओं ने। एलिज़ाबेथ ब्लैकबर्न ने जब एक एककोशीय जीव *टेट्राहायमेना* के डीएनए का विश्लेषण किया तो पाया कि गुणसूत्र के सिरों पर क्षारों की एक विशिष्ट श्रृंखला होती है जो कई बार दोहराई जाती है। इस श्रृंखला की भूमिका स्पष्ट नहीं थी। दूसरी ओर ज़ोस्टाक ने पाया कि जब एक छोटे डीएनए खंड को एक खमीर कोशिका में डाला जाए, तो वह जल्दी ही विघटित हो जाता है।

ज़ोस्टाक ने जब ब्लैकबर्न के परिणामों को देखा तो उन्होंने एक प्रयोग किया। उन्होंने उसी डीएनए खंड के दोनों सिरों पर *टेट्राहायमेना* से प्राप्त वही विशिष्ट श्रृंखला जोड़ दी और फिर उसे खमीर कोशिका में डाला तो उसका विघटन नहीं हुआ। यानी टीलोमीयर श्रृंखला डीएनए की रक्षा करती है और किसी भी प्रजाति की श्रृंखला एक-सा काम करती है। अर्थात यह एक मूलभूत प्रक्रिया है। आगे चलकर पता चला कि उसी विशिष्ट श्रृंखला वाला टीलोमीयर तमाम सजीवों में पाया जाता है।

ग्राइडर ब्लैकबर्न की छात्र थीं। उन्होंने वह एंज़ाइम - टीलोमरेज़ - प्राप्त किया जो टीलोमीयर के निर्माण का काम करता है। उन्होंने पाया कि इसी एंज़ाइम की बदौलत हर बार डीएनए की अनुकृति बनाते समय टीलोमीयर की भी अनुकृति बन पाती है और वह छोटा नहीं होता।

जहां टीलोमीयर व टीलोमरेज़ की खोज ने कोशिका व उसकी प्रक्रियाओं की हमारी समझ को आगे बढ़ाया, वहीं इसने कई नई संभावनाओं को जन्म भी दिया। जैसे एक बात तो यह स्पष्ट हुई कि हर विभाजन के बाद यदि टीलोमीयर छोटा हो, तो कुछ विभाजन चक्रों के बाद कोशिका 'बूढ़ी' हो जाएगी। आम तौर पर बहुकोशीय जीवों की कोशिकाएं बहुत बार विभाजित नहीं होतीं, इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मगर कैंसर कोशिकाओं में लगातार विभाजन होता है। यह देखा गया है कि उनमें टीलोमरेज़ एंज़ाइम की सक्रियता कुछ ज़्यादा ही होती है। इसलिए उनमें टीलोमीयर बनता जाता है और वे लगातार विभाजन करती जाती हैं, बूढ़ी नहीं होतीं। यह कैंसर कोशिकाओं की पहचान का एक आधार बन सकता है और इलाज का भी। यह भी पता चला है कि कुछ विघटनकारी रोग भी टीलोमीयर की गड़बड़ी के कारण पैदा होते हैं। इनके बारे में शोध चल रहा है।

कोशिका की विभाजन क्षमता व 'बुढ़ाने' में टीलोमीयर की भूमिका को देखते हुए कुछ वैज्ञानिकों ने यह विचार व्यक्त किया कि हो न हो, टीलोमीयर ही पूरे जीव के बुढ़ाने की क्रिया से भी सम्बंधित है। मगर अब स्पष्ट हो चुका है कि किसी जीव के 'बुढ़ाने' की प्रक्रिया कहीं अधिक जटिल है और उसमें कई सारे कारक शामिल होते हैं।

अथक परिश्रम

कुल मिलाकर देखा जाए, तो इस वर्ष के नोबल पुरस्कार एक बात की ओर इशारा करते हैं। तीनों ही नोबल पुरस्कार किसी असाधारण सूझबूझ या 'तीसरी आंख' के परिणाम नहीं हैं बल्कि लगातार कठोर परिश्रम और लगन के परिणाम हैं। इनमें किसी को अचानक कोई अकल्पनीय बात सूझ गई हो, ऐसा नहीं है। कई लोगों ने मिलकर टुकड़े-टुकड़े जोड़कर पूरे चित्र को बनाने में योगदान दिया है। दूसरी बात है कि ऐसा नहीं है कि उक्त नौ नोबल विजेताओं ने उस विषय का सारा काम कर डाला हो। वास्तव में उनकी भूमिका यह रही कि समस्या से जुड़े प्रमुख सवालों को रेखांकित किया और उन पर शोध के रास्ते दर्शाए। इन रास्तों पर कई लोग चले और ज़िगसॉ पहेली के टुकड़े जोड़ते गए। ***(स्रोत फीचर्स)***